RESEARCH COMMUNICATIONS
(An International Open Access, Peer Reviewed, Multidisciplinary Online Journal)
https://research-communications.cmpcollege.ac.in
ISSN: 2584-1270
Volume: 2, Issue: 1, January-June 2024, pp.90-95

गांधी दर्शन में सिद्धान्त विहीन राजनीतिः एक विमर्श

डॉ0 उत्तम सिंह

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र
श्यामा प्रसाद मुखर्जी राज0 स्नातकोत्तर महाविद्यालय
फाफामऊ, प्रयागराज,उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश

यूरोप के मध्यकाल में धर्म और राजनीति के घालमेल में, राजनीति को इतना अशक्त कर दिया गया था कि यूरोप का सबसे बड़ा शासक पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट भी कैथोलिक चर्च के पोप के सामने नतमस्तक होता था। सर्वोच्च सत्ता पोप की यानी धर्म की हो गई थी। इसी के विरोध में धीरे–धीरे यह सिद्धांत विकसित किया गया कि राजा और पोप के कार्य क्षेत्र अलग–अलग है। इसी से सेक्युलरिज्म का सिद्धांत विकसित हुआ, जिसके अनुसार मनुष्य के जीवन का आत्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र धर्म का है और उसका सांसारिक क्षेत्र राज्य का। दोनों को एक–दूसरे के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इसी से निकला हुआ आधुनिक राष्ट्र–राज्य के लिए 'सेक्युलरिज्म' एक आवश्यक संचालक सिद्धांत है। भारत ने भी अपने संविधान में इसी 'सेक्युलरिज्म' को स्वीकारा और प्रतिपादित किया है। परन्तु व्यवहारिक जीवन में सारी दुनिया में मानव जीवन पर धर्म का व्यापक प्रभाव पड़ा है और इसलिए धर्म का राजनीति में थोड़ा बहुत हस्तक्षेप भी बना रहता है। कभी–कभी यह राज्य और समाज के लिए भारी समस्या बन जाता है। जैसे इस समय भारत वर्ष में।

संकेतक शब्द– *पारलौकिक शक्ति, देशकाल, धर्म समभाव, साम्प्रदायिकता, अवसरवादी, सिद्धान्तविहीन, लोकधर्म, औपनिवेशिक।*

प्रस्तावना

मानव सभ्यता के विकास के प्रारंभिक दौर में ही धर्म और राजनीति दोनों का प्रादुर्भाव हुआ। एक अनिश्चित और असुरक्षित जीवन में धर्म ने एक सम्बल प्रदान किया। मनुष्य ने यह माना कि कोई न कोई इस सम्पूर्ण धरती और प्रकृति का संयोजक और संचालक है और वही मनुष्य की रक्षा करता है। इस तरह एक पारलौकिक शक्ति मनुष्य की रक्षा करती है। मनुष्य और इस पारलौकिक शक्ति के बीच के सम्बन्ध को अलग–अलग धर्मों में देशकाल की परिस्थितियों के

अनुसार परिभाषित और नियमित किया गया और धर्म मानव जीवन की एक व्यापक सत्ता बन गया।

इसी तरह मनुष्य के लौकिक जीवन को संचालित करने वाली सांसारिक सत्ता का भी विकास हुआ और मनुष्य के उस सत्ता से यानी राज्य सत्ता से सम्बन्ध को राजनीति कहा गया। परन्तु जैसे कि कहावत है एक जंगल में दो शेर होते हैं तो टकराते अवश्य ही है। जब तक राज्य सत्ता बहुत संगठित और शक्तिशाली नहीं थी, तब तक धर्म का वर्चस्व बना रहा, क्योंकि मनुष्य के जीवन में ज्ञात से अधिक अज्ञात का प्रभाव बना रहता है और धर्म में तो अज्ञात के रहस्य का निर्णायक प्रभाव है। इसलिए धर्म की सत्ता विविध मान्यताओं और संस्थाओं के माध्यम से मनुष्य के जीवन पर छायी रही।

भारत के सबसे पहले संगठित राज्य मौर्य साम्राज्य में चाणक्य ने एक तरह का राज धर्म विकसित किया। उसका लिखा **'अर्थशास्त्र'** राजनीति की दुनिया की बेहद महत्त्वपूर्ण पुस्तक मानी जाती है। मौर्य सम्राट अशोक ने राज्य के धर्म को शांति और अहिंसा के रास्ते **'धम्म विजय'** की राह पर अग्रसर किया। भारत में कोई एक धर्म नहीं था। बहुत से सम्प्रदाय थे, जिनके बीच टकराहट चलती रहती थी। बुद्ध और महावीर के अनुयायी अधिक संगठित थे। फिर बाहर से ईसाई धर्म और इस्लाम भी आ गए। ऐसे में धर्मों के बीच की टकराहट से बचने का उपाय **'सर्व धर्म समभाव'** विकसित हुआ। भारत के सबसे बड़े शासकों में से एक अकबर ने इसे **'सुलह–ए–कुल'** यानी सबके साथ सुलह की तरह विकसित किया। आधुनिक काल में गाँधी जी तक यही **'सर्व धर्म समभाव'** आदर्श बना रहा है। भारत द्वारा सेक्युलरिज्म स्वीकार करने के बावजूद इसकी व्याख्या 'सर्व धर्म समभाव' के रूप में ही मान्य रही है।

परन्तु, हकीकत यह है कि धर्म और राजनीति, दोनों सत्ताओं का वाहक तो मनुष्य ही होता है और सत्ता के विषय में यह सर्वमान्य सत्य है कि सत्ता भ्रष्ट करती है, क्योंकि वह निहित हित पैदा करती है और हितों में टकराहट होती ही रहती है। सारांश यह है कि राजनीति धर्म का और धर्म राजनीति का इस्तेमाल करने से बाज नहीं आते। आज की शब्दावली में इन दोनों के घालमेल के लिए साम्प्रदायिकता का इस्तेमाल किया जाता है। धर्म और राजनीति के परस्पर सम्बन्ध की रूप रेखा संक्षेप में प्राचीन भारत के लिए रोमिला थापर, मध्यकाल काल के लिए हरबंस मुखिया और आधुनिक काल के लिए बिपिन चन्द्रा ने चिन्हित किया है। भारत के संदर्भ में साम्प्रदायिकता इतना बड़ा यथार्थ बन गया है कि उसने राष्ट्रवाद को ही चुनौती दे दी है।

''सर्व धर्म समभाव'' के संस्थापक सहिष्णु कहे जाने वाले समाज में उन्नीसवीं शताब्दी में जब एक भारी सांस्कृतिक उथल–पुथल शुरू हुई, तो एक साथ जोड़ने और तोड़ने वाली शक्तियां जागृत हो गईं। एक ओर थी विविधता में एकता को चिन्हित करने वाले राष्ट्रवादी शक्तियां तो

दूसरी ओर विविधता और भिन्नता पर जोर देने वाली शक्तियां, जिन्हें औपनिवेशिक शासकों ने प्रोत्साहित किया और एक ऐतिहासिक विडम्बना की तरह भारत 1947 में आजाद हुआ, पर एक विभाजित देश के रूप में। तब से भारत में एकीकरण के तमाम प्रयासों के बावजूद साम्प्रदायिकता का, यानी धर्म और राजनीति की नकारात्मक संधि का विस्तार होता गया है।

गांधी दर्शन में सिद्धान्त विहीन राजनीति

आज तो एक तरह से धर्म, राजनीति के केन्द्र में आ गया है। राजनीति में बहुमत और अल्पमत का प्रश्न धर्म द्वारा निर्धारित होने लगा है। इसके कारण राजनीति में सिद्धांतों और विचारों का महत्त्व घटता गया है अर्थात् सिद्धान्तविहीन राजनीति का प्रभाव बढ़ता जा रहा है। जिससे देश में अवसरवादी राजनीति तेजी से पनप रही है, जैसा कि कुछ राज्यों में इसकी झलक स्पष्ट दिखाई देती है। यह कहना पूर्णतः तर्क संगत है कि हमारे पड़ोसी देश भी सिद्धान्त विहीन अथवा अवसरवादी राजनीतिक के शिकार है जैसे, पाकिस्तान, श्रीलंका आदि। भारत में सेक्युलरिज्म यानी राज्य की धर्म के मामले में नितांत तटस्थता तो कभी ठीक से लागू नहीं हुई। उसका 'सर्व धर्म समभाव' वाला रूप भी बिगड़ता गया है। और अब तो एक ही धर्म की प्रधानता, या यूं कहें कि वर्चस्व की बात की जाने लगी है। इससे समाज में धर्म के आधार पर कटुता और कलह पैदा होती जा रही है।

धर्म और राजनीति का घालमेल और धर्म का राजनीति के लिए प्रभावी उपकरण बनना समाज के लिए ऐसा खतरा बन गया है कि इस पर समुचित ध्यान नहीं दिया गया, तो समाज ऐसे विघटन तक पहुंच जाएगा जहां से लौटना बेहद कठिन होगा। इसके लिए सभी पार्टियों के संवेदनशील और समझदार नेताओं को बैठकर देश के लिए दूरगामी हितों पर बात करनी होगी और भारत में चुनाव प्रणाली और राजनीति कर्म में कुछ मूलभूत सुधार करने होंगे। दूसरी ओर समाज में एक ऐसे सांस्कृतिक आंदोलन की जरूरत है, जो जीवन मूल्यों और मानव जीवन के उद्देश्यों के प्रति समाज को सचेत करे और सरकारों पर दबाव डाल सके कि वे सही दिशा में सुधार करने पर मजबूर हों।

भारत के आधुनिक राजनीतिक चिंतकों ने भी राजनीति में नैतिकता पर विशेष बल दिया। इनमें राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अहिंसा, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा तथा असहयोग नैतिकता से ही जुड़ी राजनीति के मुख्य अवयव हैं। गांधीजी नैतिक दार्शनिक थे। उन्होंने राजनीति और नैतिकता के बीच पुल का निर्माण करते हुए यह तर्क दिया कि राजनीति के क्षेत्र में साधन और साध्य दोनों समान रूप से पवित्र होने चाहिए। बापू का यह मानना था कि आध्यात्मिक आधार के बगैर राजनीति स्वच्छ नहीं रह सकती।

आध्यात्मिक (Spiritual), धार्मिक (Religious) तथा नैतिक (Moral or Ethical) ये तीनों अभिव्यक्तियां, **बापू** के लिए एक ही अर्थ का संकेत देती थीं। धर्म का अर्थ उनके लिए बहुत व्यापक था। उनका यह मानना था कि प्रत्येक राजनीतिक कृत्य या संस्था को नैतिक कसौटी पर कसना आवश्यक है। अपनी बात को बापू ने बहुत मजबूती से लोगों के सामने रखते हुए कहा–जो राजनीति, धर्म से विहीन है, अर्थात् सिद्धान्त से विहीन है, वह मृत्यु–जाल के तुल्य है और आत्मा को पतन के गर्त में धकेलती है। राजनीति वहीं तक वरेण्य है, जहां तक वह नैतिकता एवं सिद्धान्तों की कसौटी पर खरी उतरती हो, अन्यथा उससे किनारा कर लेना चाहिए।

वस्तुतः, गांधीजी का मुख्य सरोकार मनुष्य के नैतिक जीवन से था, जो आज भी प्रासंगिक है। राजनीति को उन्होंने नैतिकता के साधन के रूप में देखा और अपनाया। भारत की स्वाधीनता के लिए चलाए गये आंदोलनों के पीछे भी उनका एक नैतिक दृष्टिकोण था। इस प्रकार वह देश को नैतिक पुनरुत्थान (Moral Regeneration) की ओर ले जाना चाहते थे। नैतिक उत्थान के लिए ही उन्होंने आत्मसंयम एवं त्याग भावना को अपनाने पर विशेष बल दिया।

परन्तु यह दुर्भाग्य का विषय है कि आज की राजनीति सिद्धान्त विहीन हो गई है अर्थात् अवसर की राजनीति एवं सिद्धान्त सभी पार्टियों में हावी होती जा रही है जैसे–बिहार में कुछ दिन पहले देखने को मिला। नैतिकता एवं सिद्धान्त में सामंजस्य कम होता जा रहा है और शायद इसीलिए शुचिता की राजनीति 'गुलरी का फूल' बन गई है। मौजूदा राजनीतिक परिदृश्य नितांत भयावह है, तो इसलिए कि इसमें नैतिकता और धर्म का कोई स्थान नहीं रह गया है। लोग राजनीति की व्याख्या ही गलत ढंग से करने लगे हैं और इसमें से उचित–अनुचित का फर्क ही गायब हो गया है। साधन के अनैतिक होने के परिणाम आज की राजनीति में साफ परिलक्षित हो रहे हैं। वर्तमान में जो लोक तंत्र की विफलता (System Failure) की स्थिति दिख रही है, वह अराजक एवं पथभ्रष्ट राजनीति की ही देन है। यदि राजनीति को हमने नैतिकता और नीति के साधन के रूप में देखा और अपनाया होता, तो यह स्थिति कदापि न पैदा होती।

आज हम लोकतंत्र के प्रति बढ़ते अविश्वास के जिस खतरे से जूझ रहे हैं, वह भी राजनीति पर नैतिकता की ढीली होती पकड़ का ही नतीजा है। न तो राजनीति में नैतिकता रही, न ही कोई सिद्धान्त और न ही राजनेताओं में नैतिक साहस। यही कारण है कि जनप्रतिनिधियों के प्रति आम जनता की आस्था घटती जा रही है। हमारे बीच से अब जननायक एवं महानायक निकल कर सामने नहीं आ रहे हैं। झूठ, फरेब, धूर्तता और मक्कारी को राजनीति के पर्याय के रूप में देखा जाने लगा है। इन्हीं सब कारणों से जनता आज बेहाल एवं परेशान है।

कमरतोड़ महंगाई, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, बढ़ती हिंसा एवं अराजकता, आर्थिक असमानता, गरीबी, बेरोजगारी एवं आम–जनजीवन से जुड़ी अनेकानेक समस्याएं नैतिकता विहीन राजनीति की ही देन है। नैतिकता से कोसों दूर पहुंच चुकी राजनीति के कारण न सिर्फ अनेक विद्रूपताएं एवं विसंगतियां पैर फैला रही हैं, बल्कि इस दंश को झेलने वालों में अवसाद एवं निराशा के भाव भी बढ़ रहे हैं। एक अजीब सी संवेदनहीनता का दायरा हमारे इर्द–गिर्द बढ़ता जा रहा है और सत्ता के प्रति आदर एवं सम्मान के भाव का लोप होता जा रहा है। कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि राजनीति से नैतिकता के दूर होने के कारण संवैधानिक संकट की घड़ी सामने आ गई है। यह संकेत लोकतंत्र के लिए अच्छा नहीं है। सुबह का अखबार पढ़िये या टीवी पर समाचारों का प्रसारण देखिए, राजनीतिक अनैतिकता और भ्रष्ट व्यवहार के ढेरों समाचार मिल जाएंगे। इन बातों का हमारे राष्ट्रीय चरित्र पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। जिस राजनीति से यह अपेक्षा की जाती थी कि वह अन्याय और अत्याचार से मुक्त करवाकर भयमुक्त वातावरण उपलब्ध करवाएगी, नैतिकता से विमुख वह राजनीति स्वयं भय, अन्याय और अत्याचार की पोषक बन गई है। राजनीति में बढ़ती विवेकशून्यता, संवेदनहीनता एवं सिद्धान्त विहीनता के बीच आम जनता पिस रही है। अवसरवादी राजनीतिक अतिवादिता का दायरा बढ़ता जा रहा है और इसका नकारात्मक चेहरा लोकतंत्र में आस्था रखने वालों को डरा रहा है।

बीसवीं शताब्दी के महानतम वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटीन ने सत्य और धर्म में गहन आस्था रखने वाली गांधी जी के बारे में निम्न विचार रखे–''गांधी जी भारत के ऐसे नेता थे, जिनका नेतृत्व सत्ता पर आधारित नहीं था। वस्तुतः वे ऐसे राजनीतिज्ञ थे जिनकी सफलता कूटनीति पर नहीं, बल्कि उनके व्यक्तित्व के प्रभाव पर निर्भर थी।'' वे ऐसे विजयी योद्धा थे जिन्होंने हिंसा का सख्त विरोध किया। वे समझदार, सहज, विनम्र और दृढ निश्चयी थे और उनके जीवन में कोई असंगति नहीं थी। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति अपने देशवासियों के उद्धार और कल्याण में लगा दी। यूरोप की बर्बरता का मानवता से सामना करके उन्होंने हमेशा के लिए अपनी श्रेष्ठता साबित की। सम्भव है कि भविष्य की पीढ़ियां यह मानने को तैयार न हो कि ऐसा कोई व्यक्ति इस धरती पर विचरण किया हो।

निष्कर्ष

अतः हम कह सकते है कि इन विभिन्न समस्याओं के बावजूद भी इसका समाधान है, चूंकि वस्तुतः, राजनीति, सिद्धान्त विहीन होने के कारण उसमें जो विकृतियां पैदा हुई हैं, उनसे हताश होने की बहुत जरूरत नहीं है। हर रात के बाद सुबह होती है। नैतिकतापूर्ण, सिद्धान्त युक्त राजनीतिक चिंतन की जड़ें हमारे देश में बहुत गहरी हैं, जिसे महात्मा गांधी, गोपाल

कृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, जय प्रकाश नारायण, रवीन्द्र नाथ टैगोर, राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, डॉ0 राम मनोहर लोहिया तथा आचार्य विनोबा भावे जैसे महापुरुषों ने नये आयाम दिए। इसके स्वरूप अथवा दशा को बदलने के लिए हमें इन महापुरुषों के दर्शन एवं नैतिकतावादी चिंतन को आत्मसात करना होगा और अपनी पुरानी मान्यताओं की ओर पुनः लौटना होगा। हमें बापू के पद–चिह्नों का अनुसरण करते हुए धर्ममूलक, धर्म प्राण, नैतिक तथा सत्य और अहिंसा के धार्मिक सिद्धांतों से ओत–प्रोत राजनीति के संचालन की तरफ लौटना होगा। जब साधन अच्छा होगा, तब साध्य भी अच्छा होगा। यह तभी संभव है जब हम सब मिलकर राजनीति को आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक आधार देनें का प्रयास करें। अर्थात् जब राजनीति में लोक इच्छा प्रमुख हो जायेगी और राजनेता, जब लोक सेवा को अपना लोक धर्म बना लेगें तभी राजनीति में आयी सम्पूर्ण विकृतियां स्वयं समाप्त हो जायेगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उपाध्याय, हरिशंकर, गांधीवाद के मूल स्वर, ऋषि कुल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, प्रयागराज, 2020
2. पाण्डेय, दुर्गादत्त, गांधीदर्शन के मूल बिन्दु, शेखर प्रकाशन, प्रथम संस्करण, प्रयागराज, 2006
3. पाण्डेय, संगमलाल, गांधी का दर्शन, दर्शनपीठ इलाहाबाद, 1985
4. गांधी, धर्मनीति, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951
5. गांधी, गीता–माता, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1951
6. गांधी, हिन्दू धर्म, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1955
7. सिंह, रामजी, गांधी दर्शन मीमांसा, बिहार ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2007
8. कालेलकर, काका, सत्याग्रह, विचार और युद्ध नीति, 2012
9. कालेलकर, काका ,गांधी का जीवन दर्शन, नवजीवन ट्रस्ट अहमदाबाद 1976
10. शर्मा, वी0एम0 गांधी दर्शन के विविध आयाम, पृ0 165
11. उपाध्याय, हरिशंकर, गांधीवाद के मूल स्वर, ऋषिकुल प्रकाशन, पृ0 78